न्यायदर्शन के उद्भव एवं विकास में मिथिला का योगदान

सत्यदेव मिश्र

बृहदारण्यकादारभ्य प्राचीनन्यायप्रवर्तकः गौतमः, वाचस्पतिमिश्रः, तद्गुरुः त्रिलोचनः, पश्चात् तदनुयायी उदयनः इति प्राचीनन्यायप्रवर्तकेषु मिथिलाया योगदानं दृढं वर्णयति एषः लेखः। तथैव नव्यन्यायसरण्यामपि गङ्गेशोपाध्यायात् प्राक् मैथिलैः नैयायिकैः समारचिता पृष्ठभूमिरपि अत्र स्पष्टं प्रादर्शि। आधुनिकनैयायिकैरपि विहितं योगदानमत्र स्मर्यते।

भारतवर्ष के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक उद्भव तथा सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विकास के क्षेत्र में मिथिला का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही राजर्षि जनक की राजधानी मिथिला का लक्ष्य अध्यात्मविद्या का प्रसार रहा है। समस्त भारतीय दर्शनों के स्रोतभूत बृहत्काय **बृहदारण्यक उपनिषद्** के प्रमुख– तृतीय एवं चतुर्थ–अध्यायों की उद्भूति शास्त्रार्थ के रूप में 'सत्यवक्ता, सर्वशास्त्रज्ञ, वेदपारङ्गत, शूर'[१] 'श्राप एवं चाप दोनों बलों में अजेय'[२] 'महात्मा'[३] एवं 'असंख्येय गुण'[४] राजर्षि जनक के उस सत्र में हुई है, जिसमें कुरु तथा पाञ्चाल देशों के ब्राह्मण, तशिष्य ब्रह्मिष्ठ याज्ञवल्क्य, जरत्कारुगोत्रोत्पन्न आर्तभाग, लाह्यायनि, चक्रपुत्र, उषस्त, कुषीतकसूनु कहोल, वचक्नुपुत्री सुविश्रुता गार्गी, अरुणापत्य उद्दालक, शकलसुत विदग्ध तथा स्वयं आत्मतत्त्व जिज्ञासु वैदेह जनक के भाग लिया था। यदि **बृहदारण्यक उपनिषद्** को सम्पूर्ण भारतीय विचार शास्त्र का अक्षय स्रोत कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि आत्मा की अपरोक्षता[५], जीव एवं परमात्मा की एकता,[६] आत्मतत्त्व के दर्शन, श्रवण मनन एवं निदिध्यासन की अवश्यकरणीयता,[७] दुःख ध्वंस तथा परमसुख की प्राप्ति के परमतत्त्व की साक्षात्कर्तव्यता[८] प्रभृति मन्त्र मणियों से **बृहदारण्यक उपनिषद्** ने जिन ज्ञान रश्मियों को आध्यात्मिक जगत् में विकीर्ण किया, उनको ही दिग्–दिगन्त में प्रसारित करने के लिए न केवल शङ्कराचार्य के

अद्वैत, रामानुज के विशिष्टाद्वैत तथा माध्यावार्च के द्वैत वेदान्तों की अविच्छिन्न परम्परा चली अपितु अन्य भारतीय दर्शनों–न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, तथा पूर्वमीमांसा–की आधारशिला भी रखी गयी। समस्त भारतीय दर्शनों के उद्‌भव में **बृहदारण्यक उपनिषद्** या अन्य उपनिषदों के योगदान का उल्लेख प्रस्तुत निबन्ध का विषय नहीं, अतः केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उपनिषद् युग (१००० ई. पू.) में ही मिथिला ने न्याय का प्रमाणादि षोडश अङ्गों[९] का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष आभास तथा न्यायाङ्गों के ज्ञान से प्राप्त होने वाले निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष के स्वरूप का स्पष्ट विवरण दे दिया था।

इससे पूर्व कि उपनिषद् युग के परवर्ती कालों में न्यायक्षेत्र में मिथिला के स्थान का प्रतिपादन किया जाय, न्याय क्या है, यह जानना आवश्यक है। भाष्यकार वात्स्यायन के अनुसार, प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द प्रमाणों से अर्थ की परीक्षा अर्थात् विषय का ज्ञान करना न्याय है।[१०] स्पष्ट शब्दों में, प्रमाण और तर्क अर्थात् युक्ति के द्वारा सिद्धान्त विशेष की परीक्षा न्याय है। न्याय अर्थात् तत्त्वनिर्णय की विद्या होने के कारण न्यायशास्त्र को न्यायविद्या भी कहते हैं। **'आन्वीक्षिकी'** न्याय दर्शन का एक अन्य नाम है क्योंकि प्रत्यक्ष एवं शब्द इन दोनों प्रमाणों के द्वारा ईक्षित अर्थात् ज्ञात अर्थ का अनुमान प्रमाण से अन्वीक्षण अर्थात् बाद में अनुमान किया जाता है।[११] वस्तुतः न्याय दर्शन में अनुमान की इतनी प्रधानता है कि प्रत्यक्षतः ज्ञात वस्तु के भी तत्त्व का निर्णय करने के लिए तर्करसिक या नैयायिक अनुमान प्रमाण का सहारा लेते हैं।[१२] आन्वीक्षिकी विद्या या न्याय का मुख्य प्रयोजन तत्त्वज्ञान है, अतः इसे सभी विद्याओं का प्रदीप, सभी कर्मों का उपाय तथा सभी धर्मों का शाश्वत आश्रय माना गया है–

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता।

कामन्दकीय नीति सार में आन्वीक्षिकी विद्या को आत्म विद्या कहा गया है क्योंकि इसके द्वारा प्राप्त तत्त्व ज्ञान से आत्मा सुख-दुःख से मुक्त हो जाता है।[१३]

सम्पूर्ण भारतीय न्याय शास्त्र को दो भागों में विभक्त किया जाता है–(१) प्राचीन न्याय शास्त्र, तथा (२) नव्य न्यायशास्त्र। प्राचीन न्याय में गोतम के न्यायसूत्र तथा उन पर लिखे गए भाष्य एवं टीकाग्रन्थ आते हैं तथा नव्य न्याय में स्वतन्त्र लिखे गए ग्रन्थों की गणना की जाती है। न्याय में स्वतन्त्र लिखे गए ग्रन्थों की गणना की जाती है। न्याय के प्राचीन एवं नव्य दोनों रूपों के उद्‌भव

एवं प्रसार में मिथिला का नाम अग्रगण्य है। निम्न पृष्ठों में मिथिला की रत्न–प्रसविनी धरित्री में जन्म लेने वाले प्राचीन एवं नव्य नैयायिकों तथा उनकी अमर कृतियों का एक क्रमिक पर संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

१. प्राचीन न्याय–

आविश्वव्यापी न्याय शास्त्र के मूलाधार महर्षि गोतम के न्याय सूत्र हैं। इन सूत्रों पर ही सम्पूर्ण न्याय वाङ्मय आधृत है। न्याय सूत्र प्रणेता के अनेक नाम प्राप्त होते हैं। **पद्मपुराण**[१४], **स्कन्दपुराण**[१५] **गान्धर्व तन्त्र**[१६] **नैषध चरित**[१७] और विश्वनाथवृत्ति, **प्रभृति**[१८] ग्रन्थों में महर्षि को **न्यायसूत्र** का प्रणेता बताया गया है। इसके विपरीत **न्यायभाष्य**[१९] **न्याय–वार्तिक**[२०], **न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका**[२१] तथा **न्यायमञ्जरी** आदि ग्रन्थ इसे अक्षपाद रचित बताते हैं।[२२] महाकवि भास के अनुसार न्यायसूत्र के रचयिता मेधातिथि हैं।[२३] गोतम का एक अन्य नाम अक्षपाद भी है। इतिहासवेत्ताओं के अनुसार ये चारों नाम वस्तुतः गोतम के ही हैं और गोतम ने ही न्यायसूत्रों का प्रणयन किया था।

महर्षि गोतम का स्थान दरभंगा से उत्तर–पूर्व के कोण में २८ मील दूर बताया जाता है। इस स्थान का नाम **'गोतम–स्थान,** है। इस स्थान में आज भी चैत्र नवमी के दिन मेला लगता है। 'गोल्डस्टकर' ने अपने प्रसिद्ध पुस्तक **'पाणिनि'** में यह विचार व्यक्त किया है कि व्याकरण सूत्रकार पाणिनि को **न्यायसूत्र** ज्ञात थे, क्योंकि उन्होंने **'न्याय'** शब्द का उल्लेख अपनी अष्टाध्यायी ३.३.१२२, तथा ३.३.३७ में किया है।[२४] इस कथन की प्रामाणिकता से सहमत हो कर यह कहा जा सकता है कि गोतम ५००ई.पू. से कुछ पहले हुए होंगे।

महर्षि गोतम ने द्वितीय शताब्दी में विश्वस्तरीय ख्याति प्राप्त कर ली थी।[२५] परशिया के द्वितीय शताब्दी में संग्रहीत साक्ष्यों में हमें गोतम का नाम प्राप्त होता है।

गोतम के बाद मिथिला के प्राचीन नैयायिकों में वाचस्पतिमिश्र (८२५ ई.) तथा उनके विद्यागुरु त्रिलोचन (८००ई.) हैं।

वाचस्पति मिश्र ने अपने ग्रन्थ **'न्यायकणिका'** में त्रिलोचन की प्रशंसा निम्न शब्दों में की है–

अज्ञानतिमिरशमनीं परदमनीं न्यायमञ्जरीं रुचिराम्।
प्रसवित्रे प्रभवित्रे विद्यातरवे नमो गुरवे।।

इस श्लोक से यह ज्ञात होता है कि त्रिलोचन न्यायशास्त्र के एक विचक्षण विद्वान् थे तथा उन्होंने बौद्ध सिद्धान्तों के दूषणार्थ **'न्यायमञ्जरी'** नामक

ग्रन्थ लिखा था। ज्ञानश्री के **'क्षणभङ्गाध्याय'** में इतस्ततः प्राप्त **'न्यायमञ्जरी'** तथा न्यायमञ्जरीकार के उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि त्रिलोचन ही **'न्यायमञ्जरी'** के रचयिता थे।[२७] वाचस्पति, जैसा कि अभी हम देखेंगे, मिथिला के थे और उनके साहित्यिक निर्माण का काल ९ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में प्रारम्भ हुआ था। अतः त्रिलोचन ने **न्यायमञ्जरी** की रचना ८वीं शताब्दी के अन्त तक की होगी।

मिथिला ने जिन दार्शनिकों को जन्म दिया है, उनमें वाचस्पति मिश्र का नाम सदैव अमर रहेगा। वाचस्पति सांख्य, योग, न्याय तथा वेदान्त आदि सम्पूर्ण दर्शनों में पारङ्गत थे। एक ओर तो इन्होंने **न्यायसूत्र** के वात्स्यायन भाष्य के उद्योतकर द्वारा लिखे गए वार्तिक की **'तात्पर्य टीका'** लिख कर बौद्धों के आक्रमण से क्षीणप्रभ न्याय दर्शन की विमल आभा का चतुर्दिक् विस्तार किया तथा दूसरी ओर शङ्कराचार्य के **'ब्रह्मसूत्र भाष्य'**, मण्डन के **'ब्रह्मसिद्धि'** तथा **'विधिविवेक'**, ईश्वरकृष्ण की **'सांख्यकारिका'**, व्यास के **'योगभाष्य'** पर क्रमशः **'भामती' 'ब्रह्मसिद्धि समीक्षा'**, **'न्यायकणिका' 'साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी'** जैसे विद्वत्तापूर्ण टीका ग्रन्थों का प्रणयन कर सांख्य, योग मीमांसा तथा वेदान्त दर्शनों को समृद्ध बनाया। सम्पूर्ण भारतीय दर्शनों में एक समान गति रखने के कारण यह 'सर्वतन्त्र स्वतन्त्र' कहे जाते है। इनकी **'भामती'** का दार्शनिक जगत् में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। अद्वैत साहित्य में यह **'भामतीकार'** के रूप में तथा न्यायजगत् में **'टीकाकार'** या **'तात्पर्याचार्य'** के रूप में अमर है। इनकी 'तात्पर्यटीका' के रूप में अमर हैं। इनकी 'तात्पर्यटीका' ने **'न्यायभाष्य'** और **'न्यायवार्तिक'** के ऊपर रचित अन्य पूर्व के सभी टीका ग्रन्थों को पीछे छोड़ दिया है। इनके व्याख्या ग्रन्थ **'ब्रह्मसिद्धि समीक्षा'** की अनुपलब्धि अद्यावधि विद्वन्मण्डली में खटकती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि वाचस्पति मिश्र मिथिला के थे। एक मैथिलीय जनश्रुति के अनुसार यह मिथिला के 'मकरन्दा' नामक ग्रन्थ के थे।[२७] इसके विपरीत मिथिला के प्रसिद्ध कवि चन्दा झा के एक बहुचर्चित दोहे के अनुसार इनका निवास ग्राम **'वड गाम'** सिद्ध होता है। यह ग्राम सम्प्रति सहरसा जिले में है। दोहा इस प्रकार है–

बरसम बरइठ बसनही बेलइठ ओ बडगाम
बलिया बडियन बथनहा श्री वाचस्पतिधाम।।[२८]

चन्दा झा के दोहे को अधिक प्रामाणिक माना जाता है। वाचस्पति के ग्रन्थों के सूक्ष्मानुशीलन से भी उनके मैथिल होने की बात सिद्ध होती है। **'न्याय-कणिका'**[२९] तथा **'भामती'**[३०] में पाटलिपुत्र का उल्लेख इनके पाटलिपुत्र के समीपवर्ती होने का सूचक है। इसके अतिरिक्त 'भावती'[३१] में बलविधारक काष्ठ यन्त्र के अर्थ में मैथिल शब्द 'हडि' का प्रयोग भी उनके मैथिल होने की पुष्टि करता है।

'भामती' के श्लोकों[३२] से यह ज्ञात होता है कि इन्होंने अपनी भामती की रचना महनीयकीर्ति महीपाल राजा नृग के शासन काल में की थी। भामती की एक अन्य पंक्ति–**'न चाद्यापि न दृश्यन्ते लीलामात्रविनिर्मितानि महाप्रासाद-प्रमदवनानि श्रीमन्नृगनरेन्द्राणामन्येषां मनसापि दुष्कराणां नरेश्वराणाम्'** (२.१. ३३, पृ. ४०६)। यह पंक्ति सूचित करती है कि इन्हें नरेश्वर नृग के प्रासादों एवं प्रमदवनों का निकट दर्शन प्राप्त था। राजा नृग गुप्त साम्राज्य से समबन्धित बताए जाते हैं। अत: वाचस्पति मिश्र को गुप्त काल में रखा जा सकता है। श्री दिनेश चन्द्र भट्टाचार्य ने अनेक प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि वाचस्पति मिश्र ने अपनी लेखनी ८२५ ई. में उठाई होगी।[३३] अत: इनका जन्म काल ९ वीं शताब्दी का प्रारम्भ सिद्ध होता है।

वाचस्पति मिश्र के अनुयायी नैयायिकों में मैथिल रत्न उदयन का नाम अग्रगण्य है। उदयन ने जब अपने न्यायग्रन्थों की रचना प्रारम्भ की, उस समय बौद्ध दार्शनिक वाचस्पति तथा उनके पूर्व के न्यायशास्त्र के खण्डन में निरत थे। अत: उन्होंने नैरात्म्यवादी बौद्धों के आघातों से जर्जरप्राय न्यायशास्त्र के उद्धार के लिए वाचस्पति मिश्र के **'न्यायवार्तिकतात्पर्य टीका'** की **'परिशुद्धि'** व्याख्या लिखने के साथ **'न्यायकुसुमाञ्जलि'** तथा **'आत्मतत्त्वविवेक'** नामक दो स्वतन्त्र उच्च श्रेणी के दार्शनिक ग्रन्थों की भी रचना की। **'न्यायकुसुमाञ्जलि'** में ईश्वर सिद्धि का सफल एवं सयुक्तिक प्रयास है। इसकी रचना बौद्ध दार्शनिक कल्याणरक्षित (७७२ ई.) के **'ईश्वरमङ्गकारिका'** के उत्तर के रूप में की गयी है। दूसरे ग्रन्थ **'आत्मतत्त्वविवेक'** का प्रणयन कल्याणरक्षित की **'अन्यापोहविचारकारिका'** और **'श्रुतिपरीक्षा'** तथा धर्मोत्तराचार्य (७९० ई.) के **अपोहनाम-प्रकरण'** एवं **'क्षणभङ्गसिद्धि'** के खण्डनार्थ किया गया है। इसमें बौद्धों के अपोह, क्षणभङ्ग इत्यादि सिद्धान्तों का प्रबल युक्तियों से खण्डन कर आत्मा के नित्यत्व एवं अस्तित्व की सिद्धि की गयी है।

उदयन ने एक अन्य ग्रन्थ 'लक्षणावली' का निर्माण शक सम्वत् ९०१ में किया था–

तर्काम्बराङ्केप्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः
वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम्।

इस प्रमाण के आधार पर इनका अस्तित्वकाल १०वीं शताब्दी निश्चित होता है।

उदयन ने अपने उत्कृष्ट ग्रन्थों के माध्यम से परवर्ती न्याय जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया। जैन तथा वेदान्त आदि दर्शनों के आचार्यों ने भी अनेक शताब्दियों तक अन्य श्रेष्ठ न्यायग्रन्थों के रहते हुए भी उदयन प्रणीत ग्रन्थों को ही अपने खण्डन का लक्ष्य बनाया। सुप्रसिद्ध जैन तार्किक देवसूरि ने (१०८६–११६१ ई०) अपने **'स्याद्वादरत्नाकर'** में कुसुमाञ्जलिकार उदयन तथा कश्मीरी उदयन की तुलना क्रमशः 'द्विप' तथा 'कीट' कह कर की है–

यदत्र शक्तिसंसिद्धौ मज्जत्युदयनद्विपः।
जयन्त हन्त का तत्र गणना त्वयि कीटके।।
(द्वितीय परिच्छेद)

अद्वैत वेदान्त के आचार्य नृसिंहाश्रम के द्वारा उदयन का खण्डन[३४] इस तथ्य का द्योतक है कि १६वीं शताब्दी में भी इनके ग्रन्थों का महत्त्व उतना ही बना रहा जितना ११वीं शताब्दी में था। वाराणसी से प्रकाशित **'किरणावली'** जिस हस्तलिखित प्रति पर आधृत है, उसके लेखक ने उदयन को शिवतुल्य बताया है–

वन्दे शिवं शिवमिवोदयनं निदानमेकं गभीरनयतत्त्वविवेकसिन्धोः।
दोषाकरादपि विविच्य कलां भजन्तमन्तः कृताक्षतपदं सुमनः सहस्रैः।।

२. नव्यन्याय–

यद्यपि न्याय में नवयुग जोड़ने का श्रेय गङ्गेशोपाध्याय को प्राप्त है किन्तु उनके विषय में कुछ लिखने के पूर्व उन प्रमुख मैथिल नैयायिकों का उल्लेख अनिवार्य है जिन्होंने गङ्गेश के पूर्व नव्यन्याय की पृष्ठभूमि निर्मित कर दी थी। सर्वप्रथम उल्लेख्य हैं–श्री वल्लभाचार्य तथा केशवमिश्र।

श्री वल्लभाचार्य का समय १२वीं शताब्दी माना जाता है। उन्होंने **'न्यायलीलावती'** नाम से ग्रन्थ की रचना की। वर्धमान के **'अन्वीक्षानयतत्त्वबोध'** से यह ज्ञात होता है कि श्रीवल्लभ ने न्यायसूत्र के ५ वें अध्याय की व्याख्या भी लिखी थी। इनकी **'न्यायलीलावती'** नव्यन्याय के प्रारम्भिक श्रेष्ठ ग्रन्थों में गिनी

जाती है। श्रीवल्लभ निश्चित रूप से मिथिलावासी थे। इनकी **'न्यायलीलावती'** की व्याख्या सुप्रसिद्ध मैथिल नैयायिकों प्रभाकर, वर्धमान तथा वटेश्वर ने की है। **'न्यायलीलावती'** के प्रथम एवं द्वितीय मङ्गलश्लोकों में, वर्धमान के अनुसार, श्रीवल्लभ ने श्लेष के द्वारा अपने पिता 'पुरुषोत्तम' तथा पत्नी **'लीलावती'** का उल्लेख किया है। वस्तुतः वर्धमान का श्रीवल्लभ की वंशावली का यह ज्ञान न्यायलीलावतीकार को मिथिलावासी सिद्ध करता है। **'न्यायलीलावती'** में अनेकशः वाराणसी का उल्लेख भी इसी तथ्य को इङ्गित करता है।

तर्कभाषाकार केशवमिश्र का काल १२वीं शताब्दी का मध्य माना जाता है। इनकी **'तर्कभाषा'** को न्याय-वैशेषिक दर्शनों के सिद्धान्तों के ज्ञान का प्रवेश-द्वार या प्रारम्भिक ग्रन्थ कहा जा सकता है। यह ग्रन्थ सम्पूर्ण भारत में अब भी प्रसिद्ध है। इसकी महत्ता एवं लोकप्रियता का अनुमान इसकी उन २८ टीकाओं[३५] से लगाया जा सकता है जिनमें से एक गोपीनाथ रचित उज्ज्वला' टीका को छोड़ कर अन्य सभी मिथिला के बाहर देश के कोने-कोने में लिखी गयीं। **तर्कभाषा** की प्राप्त समस्त हस्तलिखित पुस्तकों की पुष्पिकाओं में इनके उपनाम **'मिश्र'** का उल्लेख तथा उदयन के ग्रन्थों से इनका अच्छा परिचय इस बात का द्योतक है कि यह मिथिला के थे।

गङ्गेशोपाध्याय के पूर्व अन्य जिन नैयायिकों ने मिथिला की धरती पर जन्म ले कर आन्वीक्षिकी विद्या का दिग्दिगन्त में विस्तार किया, उनमें प्रमुख हैं– दिवाकरोपाध्याय (१२००-५० ई.), तरणि मिश्र (१३०० ई.) सोंदडोपाध्याय (१३०० ई.) मणिकण्ठ मिश्र (१३०० ई.) तथा शशधराचार्य (१३०० ई.)। दिवाकरोपाध्याय उद्योतकर के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने **'न्यायनिबन्धोद्योत'**, **'खण्डनटीका'** तथा **'द्रव्यकिरणावली-विलास'** आदि ग्रन्थ लिखे हैं। तरणिमिश्र न्याय के गङ्गेशपूर्व विद्वानों में प्रमुख थे। इनके ग्रन्थ **'रत्नकोष'** से मणिकण्ठ, वर्धमान तथा गङ्गेश ने अपने ग्रन्थों में बड़े आदर के साथ उद्धरण किए हैं। सोन्दडोपाध्याय या सोन्दलोपाध्याय गङ्गेश से कुछ ही पूर्व हुए थे। मणिकण्ठ, माथुरनाथ तथा गङ्गेश ने अत्यन्त सम्मानपूर्वक इनके नाम तथा **'अभाव'** **'केवलान्वयी अनुमान'** और **'परामर्श'** के विषय में इनके मतों का उल्लेख किया है। मणिकण्ठ मिश्र नव्यन्याय के उन नैयायिकों में थे, जिनका प्रभाव गङ्गेश पर विशेषरूप से पड़ा था। गङ्गेश ने अपने ग्रन्थ **'तत्त्वचिन्तामणि'** में इनके मतो की विशेष रूप से चर्चा की है। मणिकण्ठ का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **'न्यायरत्न'** नृसिंहयज्वन् की व्याख्या के साथ मद्रास से १९५३ ई. में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ की एक और व्याख्या वाचस्पति मिश्र (द्वितीय) कृत है, जिसकी एक हस्तलिखित प्रति

भण्डारकर प्राच्य-शोधसंस्थान में सुरक्षित है। इस व्याख्या के एक उद्धरण[३६] से यह ज्ञात होता है कि मणिकण्ठ ने **'न्यायचिन्तामणि'** नाम का एक अन्य न्यायग्रन्थ भी लिखा था। दुर्भाग्यवश यह ग्रन्थ हमें नहीं प्राप्त है। शशधराचार्य का **'न्यायसिद्धान्तदीप'** एक विशालकाय ग्रन्थ है। इसका प्रकाशन एक व्याख्या के साथ १९२४ ई. में वाराणसी से हुआ है। शशधराचार्य का **'न्यायसिद्धान्तदीप'** गङ्गेश की आलोचना का विषय बना था। गङ्गेश की आलोचनाओं का उत्तर **न्यायसिद्धान्तदीप** के व्याख्याकार ने इतस्ततः दिया है।[३७]

नव्यान्याय की परम्परा में उपर्युदित मैथिलीय तार्किकों तथा कृतियों का महत्त्व केवल नव्यन्याय की पृष्ठ-अवनिका के निर्माण में है, वस्तुतः भारतीय न्याय दर्शन के युगप्रवर्तन और नव्यन्याय को अस्तित्व तथा शताब्दियों की अविच्छिन्न परम्परा में लाने का श्रेय गङ्गेशोपाध्याय को प्राप्त है। मिथिला के किस भूभाग को इन्होंने अपने जन्म से अलङ्कृत किया, इसका निर्णय अब भी विद्वानों के शोध की अपेक्षा रखता है। श्री राममोहन चक्रवर्ती बहादुर के अनुसार यह **'करियन'** गांव में उत्पन्न हुए थे जो दरभंगा से १२ मील दूर पश्चिमोत्तर में है।[३८] इसके विपरीत प्रो॰ झा के खोजे हुए राज पुस्तकालय दरभंगा में सुरक्षित दो शाखापञ्जियों का विवरण तथा तद्गत **"छादनसं तत्त्वचिन्तामणिकारक म॰म॰ परमगुरु गङ्गेश्वर दौ"** आदि का उद्धरण देते हुए श्री दिनेश चन्द्रभट्टाचार्य गङ्गेश को उस वंश से सम्बद्ध बताते हैं जिनका मूलग्राम **'छादन'** था।[३९] यद्यपि इस मैथिलीय ग्राम का पता अब तक नहीं लग सका है किन्तु प्राचीन साक्ष्यों पर आधृत श्री भट्टाचार्य का मत अधिक विश्वसनीय है। गङ्गेश ने अपने **'तत्त्वचिन्तामणि'** में श्रीहर्ष के अद्वैत ग्रन्थ **'खण्डनखण्डखाद्य'** का उद्धरण दिया है। श्रीहर्ष कन्नौज नरेश जयचन्द (११७०-११९४) की सभा में विद्यमान थे। श्रीहर्ष के इस ग्रन्थ की १२३३ ई॰ में लिखित एक प्रति प्राप्त है। इसके अतिरिक्त गङ्गेश के पुत्र वर्धमानोपाध्याय विरचित **कुसुमाञ्जलि प्रकाश** की एक हस्तलिखितप्रति एशियाटिक सोयायटी बङ्गाल में सुरक्षित है। इस प्रति के कुछ अंशों की तिथि विद्वानों के अनुसार, १३००-१३६० के बीच है। इन दोनों साक्ष्यों के आधार पर गङ्गेश का अस्तित्वकाल १३वीं शताब्दी सिद्ध होता है।

मध्ययुगीन दार्शनिक साहित्य में केवल एक ग्रन्थ **'तत्त्वचिन्तामणि'** लिख कर गङ्गेश ने जो ख्याति प्राप्त की, वह निस्संदेह किसी दूसरे को नहीं मिली। अपने निर्माण काल से ही **'तत्त्वचिन्तामणि'** मैथिल सम्प्रदाय की शिक्षा का मुख्य विषय बन गया। मिथिला आने वले २५० वर्षों तक गङ्गेश के इस ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापन की केन्द्र बनी रही। केवल इस ग्रन्थ का पाण्डित्य प्राप्त

करने के लिए अध्येता अपने जीवन के १२ वर्ष सहर्ष लगा सकते थे। **'प्रत्यक्ष'**, **'अनुमान'**, **'उपमान'** तथा **'शब्द'**– इन चार खण्डों में विभक्त, **'तत्त्वचिन्तामणि'** की जितनी टीकाएँ लिखी गयी हैं, उतनी संसार के किसी दूसरे ग्रन्थ की नहीं। श्री सतीशचन्द्र विद्याभूषण का यह कथन उपयुक्त ही है कि मूल ग्रन्थ लगभग ३०० पृष्ठ का है किन्तु इसकी टीकाओं की पृष्ठ संख्या लगभग १० लाख से भी ऊपर है। ग्रन्थ के महत्त्व का इससे बड़ा निदर्शन और क्या होगा कि इस पर जिन्होंने टीकाएँ लिखीं, उनमें अद्वैतवेदान्त के आचार्य धर्मराजाध्वरीन्द्र (१७०० ई) भी हैं।

गङ्गेश के पुत्र वर्धमानोपाध्याय भी अपने पिता के समान ही न्याय के कीर्तनीय आचार्य हैं। इन्होंने नव्यन्याय की मैथिलशाखा की प्रतिष्ठा अपने पिता के ग्रन्थ **'तत्त्वचिन्तामणि'** के आधार पर की। न्यायसाहित्य में **१. अन्वीक्षानयतत्त्वबोध, २. न्यायनिबन्धप्रकाश, ३. न्यायपरिशिष्टप्रकाश, ४. कुसुमाञ्जलिप्रकाश, ५. किरणावलीप्रकाश, ६. लीलावतीप्रकाश, ७. खण्डनप्रकाश तथा, ८. तर्कप्रकाश** (तर्कभाषा की टीका) और स्मृति साहित्य में **१. स्मृतिपरिभाषा, २. श्राद्धप्रदीप,** एवं **३. आचारप्रदीप** आदि महनीय ग्रन्थों की रचना कर वर्धमानोपाध्याय **'उपायकारक'** तथा **'प्रकाशकारक'** के रूप में अमर हो गए हैं।

जीवनाथ मिश्र, गङ्गादित्य तथा घटेशोपाध्याय १४ वीं शताब्दी के वे मैथिलीय न्यायरत्न हैं जिनका उल्लेख परवर्ती ग्रन्थों में मिलता है, किन्तु दुर्भाग्वश इनके ग्रन्थ हमें नहीं प्राप्त होते।

इसके पश्चात् १५वीं शताब्दी में मिथिला की रत्नगर्भा धरती में हम महान् तार्किक जयदेव या पक्षधर मिश्र को देखते हैं। गङ्गेश के बाद जयदेव ही ऐसे आचार्य हैं जो अपने ग्रन्थ **'आलोक'** से नव्यन्याय के एक नए सम्प्रदाय का प्रवर्तन करने में सफल रहे। इनका एकमात्र पर अमर ग्रन्थ **'आलोक'** गङ्गेश के 'तत्त्वचिन्तामणि' की टीका है। इस पर दक्षिण भारत के प्रसिद्ध नैयायिक अन्नम्भट्ट ने **'सिद्धाञ्जन'** नामक टीका लिखी है। एक अन्य व्याख्या 'स्फूर्ति' अग्निहोत्रभट्ट ने लिखी, जिसके कुछ अंश तञ्जोर के संग्रहालय में प्राप्त होते हैं। (द्रष्टव्य, पुस्तक संख्या, ६०९५-९७)। **'आलोक'** शताब्दियों तक अध्ययन-अध्ययन का विषय रहा है। 'खण्डनोद्धारभूमिका' में उद्‌धृत– **'शङ्करवाचस्पत्योः समानौ शङ्करवाचस्पती भवतः। पक्षधरप्रतिपक्षी लक्षीभूतो न च क्वापि'**– श्लोक से ज्ञात होता है कि यह अपने समय के एक अनुपमेय तार्किक थे। इनकी तार्किक प्रतिभा बाल्यकाल से ही इनकी सहचरी थी। कहा जाता है[४०] कि यह अपने

बाल्यकाल में विद्याधर के यहाँ गए और उनको बिना बताए एक कोने में बैठ गए। विद्याधर ने अवसर का लाभ उठाते हुए मजाक किया– **'प्राघुणो घुणवत् कोणे सूक्ष्मत्वान्नोपलक्ष्यते'** (अतिथि घुन के समान छोटा होने के कारण कोने में नहीं दिखाई देता।) इससे भी अधिक श्लिष्ट उत्तर जयदेव का था– **'न हि स्थूलधियः पुंसः सूक्ष्मे दृष्टिः प्रयुञ्जते'** (मोटी बुद्धिवाले सूक्ष्म वस्तु देखने में नहीं समर्थ होते)।

'आलोक' के अनुमान खण्ड से ज्ञात होता है कि जयदेव के पितृव्य महामहोपाध्याय हरिमिश्र जयदेव के गुरु थे। इसके विपरीत 'मिथिला मे प्रचलित परम्पराओं' तथा 'शब्दकल्पद्रुम' (द्वितीय भाग, पृ. १७९१) के प्रस्तुत पंक्ति– **'यज्ञपत्युपाध्यायच्छात्रः पक्षधर मिश्रश्चिन्तामणेरालोककारः'** से यह सिद्ध होता है कि यह यज्ञपति उपाध्याय के शिष्य थे। यह स्वयं भी अनेक प्रसिद्ध नैययिकों–नरहरि, माध्व, वासुदेव, सूचीकार उपाध्याय, रुचिदत्त तथा भगीरथ–के गुरु थे। नरहरि इनके गुरुपुत्र, माध्व स्वपुत्र तथा वासुदेव भ्रातृज थे। जयदेव के शिष्य रुचिदत्त ने दक्षिण भारत में अत्यधिक ख्याति प्राप्त की। रुचिदत्त के **'चिन्तामणिप्रकाश'** ने नव्यन्याय के एक अवान्तर प्रस्थान को जन्म दिया है। इस **'चिन्तामणिप्रकाश'** पर अनेक व्याख्या ग्रन्थ लिखे गए हैं। जयदेव का परिवार अब भी मिथिला में है। यह मिथिला के एक प्रसिद्ध श्रोत्रियवंश के थे। हलायुध इनके आदि पूर्वज थे। जयदेव के पिता का नाम 'वराहनाथ' था। कहा जाता है कि जयदेव यमसमा नामक ग्राम में रहते थे। यद्यपि यह 'चन्द्रालोक' तथा 'प्रसन्नराघव' के रचयिता जयदेव से भिन्न हैं, तथापि इनके शिष्य भगीरथ के द्वारा इन्हें **'पण्डितकवि'** बताया जाना हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि इन्होंने कोई काव्यग्रन्थ अवश्य लिखा होगा।

इस शताब्दी में ही वटेश्वरोपाध्याय शङ्करमिश्र, वाचस्पतिमिश्र (द्वितीय), यज्ञपति उपाध्याय जैसे महान् नैयायिकों ने भी मिथिला में जन्म लिया तथा नव्यन्याय के प्रचार एवं प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। वटेश्वरोपाध्याय न्याय एवं स्मृति, दोनों क्षेत्रों में **'दर्पणकार'** के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके लिखे हुए न्यायग्रन्थ **'न्यायनिबन्धदर्पण'** तथा **'न्यायलीलावती दर्पण'** थे, जो दुर्भाग्यवश हमें नहीं प्राप्त होते। शङ्करमिश्र बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न थे। इन्होंने **'मणिमयूख'**, **'त्रिसूत्रीनिबन्धव्याख्या'**, **'किरणावली निरुक्तिप्रकाश'**, **'भेदप्रकाश'** तथा **'खण्डन टीका'** लिख कर न केवल न्यायशास्त्र को श्रीसम्पन्न किया, अपितु **'पण्डित विजय'** तथा **'रसार्णव'** लिख कर काव्यजगत को और **'गौरी दिगम्बर प्रहसन'** प्रणीत कर नाट्यजगत् को भी अलङ्कृत किया। इनके जीवन

के साथ अनेक असाधारण घटनाएँ यथा ढोलवादिका के घर इनक जन्म समय पर ढोल का स्वयं बजना और इनके शिष्य द्वारा यामयुग्म अर्थात् ६ घण्टों में २०० पृष्ठों में सम्पूर्ण हरिवंश लिखा जाना आदि घटनाएँ सम्बद्ध हैं। अपने ५ वर्ष के उम्र में ही राजा शिवसिंह को सम्बोधित करते हुए जो कहा था–

बालोऽहं जगदानन्द! न मे बाला सरस्वती।
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामि जगत्रयम्।

(राजन्, मैं बालक ही हूँ, पर मेरा ज्ञान बालक नहीं, यद्यपि पाँच वर्ष का अभी नहीं हूँ किन्तु तीनों लोकों का वर्णन करने में समर्थ हूँ।) उसे आज भी मिथिला का छात्रवर्ग आश्‍चर्य एवं श्रद्धा क साथ दुहराता रहता है। वाचस्पतित मिश्र (द्वितीय) भी एक महान् विद्वान थे। मिथिला के स्मृति लेखकों में इनका नाम आदरपूर्वक लिया जाता है। अपनी वृद्धावस्था में इन्होंने **'श्राद्धकल्प'** नामक ग्रन्थ लिखा था। इस ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक–

शास्त्रे दश स्मृतौ त्रिंशन्निबन्धा येन यौवने।
निर्मितास्तेन चरमे वयस्येष विनिर्ममे।।

से यह ज्ञात होता है कि इन्होंने अपने युवाकाल में ही **'शास्त्र'** अर्थात् न्याय के १० तथा स्मृति के ३० ग्रन्थ लिखे थे। इनके लिखे हुए न्याय ग्रन्थ **१. न्यायतत्त्वालोक** (न्यायसूत्र व्याख्यान), **२. न्यायसूत्रोद्धार, ३. न्यायरत्नप्रकाश, ४. प्रत्यक्षनिर्णय, ५. अनुमाननिर्णाय, ६. शब्दनिर्णय, ७. खण्डनोद्धार** तथा **८. 'तत्त्वचिन्तामणि'** के प्रत्यक्ष तथा अनुमान खण्ड की व्याख्या हैं। इन ग्रन्थों में अनेक ग्रन्थ अप्राप्त तथा अनेक ग्रन्थ हस्तलिखित पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं। यज्ञपति उपाध्याय ने गङ्गेश के **'तत्त्वचिन्तामणि'** पर **'प्रभा'** नाम की एक व्याख्या लिखी थी। यह **'तत्त्वचिन्तामणि'** की अत्यन्त प्रामाणिक टीका थी तथा इसने अपने पूर्व की टीकाओं का महत्त्व कम कर दिया था।

१६ वीं तथा १७ वीं शताब्दी में मिथिला ने जिन यशस्वी तार्किकों को जन्म दिया उनमें प्रमुख हैं– माधवमिश्र, महेशठक्कुर, मधुसूदनठक्कुर, महामहोपाध्याय माधवमिश्र तथा तर्काचार्य केशवमिश्र।

माधवमिश्र गदाधर के पुत्र थे। इन्होंने अद्वैत वेदान्त के खण्डनार्थ **'भेददीपिका'** का प्रणयन किया। इस ग्रन्थ में इन्होंने 'भामती', 'खण्डन' तथा 'चित्सुखी' जैसे प्रसिद्ध अद्वैत ग्रन्थों की आलोचना की है।

महेशठक्कुर ने जयदेव के **'आलोक'** पर सुप्रसिद्ध **'दर्पण'** टीका लिखी है। यह दरभंगा राज्य के संस्थापक भी थे। दरभंगा प्रान्त इन्हें इनके शिष्य रघुनन्दनराय ने गुरुदक्षिणा के रूप में समर्पित किया था। रघुनन्दनराय को यह प्रान्त सम्राट् अकबर से उपहार में प्राप्त हुआ था।

मधुसूदन ठक्कुर भी मिथिला के महान् तार्किकों में गिने जाते हैं। इनके पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ **'कण्टकोद्धार'** अथवा **'तत्त्वचिन्तामण्यालोक'** के **'मङ्गलवाद'** अंश का प्रकाशन **'तत्त्वचिन्तामणि'** की अन्य व्याख्याओं के साथ १९३९ ई. में हुआ है। **'कण्टकोद्धार'** के प्रारम्भ के चौथे श्लोक से यह ज्ञात होता है कि मधुसूदन ठक्कुर ८ विभिन्न शास्त्रों–न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, महाभाष्य, काव्य, धर्मशास्त्र तथा मन्त्रशास्त्र में पारङ्गत थे।

महामहोपाध्याय माधवमिश्र मिथिला के अन्तिम महान् नव्यनैयायिक हैं जिन्होंने जयदेवमिश्र के **'आलोक'** की टीका लिखी। प्रसिद्ध दक्षिण भारतीय नैयायिक अन्नम्भट्ट ने अपनी **आलोक** टीका **'सिद्धाञ्जन'**[४१] की रचना, जिन आलोक व्याख्याओं के अध्ययनोपरान्त लिखी है, उनमें माधवमिश्र की व्याख्या भी है–

मैथीं महेशमधुसूदनमाधवादेर्व्याख्यां शिरोमणिगिरामवसाय सारम्।
सिद्धाञ्जनं मणिविलोकनलालसानामालोकमार्गगमिनमहमातनिष्ये।।

तर्काचार्य केशवमिश्र तर्कभाषाकार केशवमिश्र से भिन्न हैं। इन्होंने न्यायसूत्र पर 'गौतमीय सूत्रप्रकाश' नाम की व्याख्या लिखी जिसकी एक प्रति राज पुस्तकालय दरभंगा में सुरक्षित है।

इसके पश्चात् कालक्रम से जो नैयायिक मिथिला की शोभा बने, उनमें प्रमुख हैं–महामहोपाध्याय गोकुलनाथ उपाध्याय, गिरिधरोपाध्याय, महामहोपाध्याय रूपनाथ ठक्कुर, विश्वनाथ झा तथा धर्मदत्त या बच्चा झा।

महामहोपाध्याय गोकुलनाथ उपाध्याय १६४०–५० ई. के बीच हुए थे। इन्होंने अपने पिता महामहोपाध्याय पीताम्बर निधि से ही अध्ययन किया था। संस्कृत का कदाचित् ही कोई क्षेत्र हो जिसमें इनकी लेखनी नहीं चली। इन्होंने न्याय, वैशेषिक, वेदान्त, व्याकरणदर्शन, अलङ्कार, काव्य, नाटक, ज्योतिष तथा स्मृति सबमें ग्रन्थ लिखे हैं। इनके लिखे हुए न्यायग्रन्थ **१. चक्ररश्मि, २. दिक्कालनिरूपण, ३. दीधितिविद्योत, ४. कुसुमाञ्जलिटिप्पण, ५. खण्डनकुठार, ६. लाघवगौरवरहस्य, ७. मिथ्यात्वनिरुक्ति, ८.**

न्यायसिद्धान्ततत्त्व, ९. षडवाकयरत्न, १०. शक्तिवाद तथा ११. कादम्बरीप्रदीप हैं। वाचस्पति के **'द्वैतनिर्णय'** का व्याख्यानभूत ग्रन्थ **'कादम्बरीप्रदीप'** इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ है, जिसकी रचना इन्होंने अपनी मृतपुत्री **'कादम्बरी'** की कीर्ति को कल्पावधि बनाए रखने के लिए की थी।

गिरिधरोपाध्याय का **'विभक्त्यर्थनिर्णय'** अपने विषय का अनूठा ग्रन्थ है। इसका प्रकाशन चौखम्बा से १९०२ ई. में हुआ है। यह ग्रन्थ इन्होंने १७२० ई. में लिखा था। इनके पिता महामहोपाध्याय वागीश भी एक ख्यातिलब्ध तार्किक रहे होंगे क्योंकि इनके शब्दों में इनके पिता **'अन्वीक्षानलिनीप्रमोदनरवि'** थे।

महामहोपाध्याय रूपनाथ ठक्कुर महाराज माधवसिंह (१७७५-१८०७ ई.) के राज्याश्रित तथा निकट सम्बन्धी थे। इन्होंने महेश के **'आलोकदर्पण'** की **'दर्पणभावप्रकाश'** टीका महाराजा माधवसिंह के अनुनय पर लिखी थी। इनका जन्म काल १७५० ई. माना जाता है। इन्होंने बनारस अथवा नवद्वीप न जा कर मिथिला में ही महामहोपाध्याय सुबोध से अध्ययन ग्रहण किया था। इनके मृत्युकाल १८२८ ई. में इनके पुत्र महामहोपाध्याय अच्युत ठक्कुर ने 'अच्युतेश्वर' नामक शिवमन्दिर का निर्माण कराया था।

विश्वनाथ झा दरभङ्गा के एक ख्याति प्राप्त नैयायिक थे। इन्होंने चकौती ग्राम क प्रतिभाशाली नैयायिकों परमेश्वर झा तथा ऋद्धिनाथ से प्रारम्भिक अध्ययन प्राप्त किया था। इसके बाद 'नवद्वीप' में गोलकन्याय और प्रसन्न तर्करत्न से शिक्षा ग्रहण की। गङ्गेश के 'चिन्तामणि' के जटिलतम **'व्याधिकरण'** पर **'सिद्धान्तसार'** तथा उदयन की **'लक्षणावली'** पर **'प्रकाश'** नामक व्याख्यान लिख कर विश्वनाथ झा ने न्याय की कीर्तिलता का और विस्तार किया। इनके ग्रन्थ नव्यन्याय के आधुनिकतम स्वरूप के निदर्शक हैं। यह अपने समय के अद्वितीय नैयायिक थे। जब १८९१ ई. में इनके विद्यामन्दिर में महेश न्यायरत्न आए, उस समय ८ विद्यार्थी इनसे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। तत्काल मिथिला में अन्य किसी नैयायिक से इतनी संख्या में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्र नहीं थे।

मिथिला विभूति धर्मदत्त झा 'बच्चा झा' के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे। आधुनिक समय के यह सर्वश्रेष्ठ नैयायिक थे। अपनी बहुमुखी प्रतिभा तथा गम्भीर विद्वत्ता के कारण ये 'सर्वतन्त्रस्वतन्त्र' माने जाते थे। मिथिला के प्रसिद्ध श्रोत्रिय वंश में इनका जन्म हुआ था। इनके पितामह महामहोपाध्याय रत्नपाणि झा ने महाराजा छत्रसिंह (१८०७-३९ ई.) तथा उनके पुत्र और पौत्र के राजदरबार को अलङ्कृत किया था। बच्चा झा मार्च १८६० ई. में नवानी ग्राम में उत्पन्न हुए थे।

इनके जीवन का मुख्य उद्देश्य अध्ययन, अध्यापन तथा ग्रन्थों का प्रणयन था। केवल ५९ वर्ष की आयु अर्थात् १९१८ ई. में इनकी मृत्यु हो गयी थी। किन्तु इस अवधि में ही इन्होंने विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ लिखे। एक ओर प्रसिद्ध अद्वैत आचार्य मधुसूदनसरस्वती के **'अद्वैतसिद्धि'** की **'अद्वैतसिद्धिचन्द्रिका'** और **'गीता टीका'** की **'गूढार्थतत्त्वालोक'** तथा श्रीहर्ष के **'खण्डनखण्डखाद्य'** की टीकाएँ लिख कर वेदान्तजगत् में अपने यश:काय की प्रतिष्ठा की तथा दूसरी ओर **'व्याप्तिपञ्चकविवृत्ति'**, **'सिद्धान्तलक्षणविवृत्ति'**, **'सामान्यनिरुक्तिविवृति'**, **'गूढार्थतत्त्वालोक'** (व्याप्तिवाद व्याख्यान) तथा जगदीश के कई ग्रन्थों की विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियाँ लिख कर न्याय साहित्य में अमर स्थिति बना ली। आज भी इनके शिष्य-प्रशिष्य भारत के कोने-कोने में इनके कीर्ति की गाथा गा रहे हैं।

उक्त पृष्ठों के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही मिथिला न्याय की धात्री रही है। भारत की चारों दिशाओं में न्याय की प्रतिष्ठा के मूल में मिथिला का ही हाथ रहा है। इतिहास के पृष्ठ साक्षी हैं कि प्रसिद्ध मैथिल न्यायरत्न जयदेव मिश्र के शिष्य वासुदेव सार्वभौम ने १५०३ ई. मे बङ्गाल में गङ्गेशोपाध्याय के ग्रन्थ **'तत्त्वचिन्तामणि'** के अध्ययनअध्यापनार्थ **'नवद्वीप'** विद्यापीठ की स्थापना की। इसके बाद रघुनाथशिरोमणि ने **तत्त्वचिन्तामणि** के माध्यम से सारे बङ्गाल में न्याय का प्रचार किया। धीरे-धीरे महाराष्ट्र, मद्रास और कश्मीर में प्रचलित होते-होते न्यायशास्त्र ने सम्पूर्ण भारत में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। पूर्व, पश्चिम, तथा दक्षिण में क्रमशः कौषिकी (कोसी), गण्डक तथा गङ्गा नदियों की अभेद्य धाराओं से सतत क्षालित, उत्तर में नगराज देवतात्मा हिमालय के बलवान् हाथों से संरक्षित तथा समस्त निधियों की एकमात्र अधिष्ठात्री महालक्ष्मी की अवतार भूमि मिथिला का गोतम, उदयन, वाचस्पतिमिश्र, गङ्गेश एवं जयदेव मिश्र जैसे अमूल्य न्यायरत्नों का प्रसवन तथा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से न्यायादि भारतीय विचारशास्त्रों के उद्‌भव एवं विकास मे यावत्कल्पान्त योग देते रहना स्वाभाविक ही है।

---

१. मिथिलाधिपति शूरं जनकं सत्यवादिनम्।
निष्ठितं सर्वशास्त्रेषु तथा वेदेषु निष्ठितम्। (वाल्मीकि रामायण-१.१३.२१)

२. उत्तररामचरित-४.२३

३. वाल्मीकि रामायण-१.३१.११ तथा १.६६.४

४. वही, १.७२.१८

५. 'यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म' (बृ. उ, अ. ३, ब्रा. ४, मन्त्र १)

६. 'स वा अवमात्मा ब्रह्म' (वही ४.४.१), तुलनीय वही, २.५.१९

७. 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' (वही ४-५६) तुलनीय-वही २.४.५

८. 'य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति' [वही, ४.४.१४] तुलनीय, कठ उपनिषद्, ६.२.९, श्वेताश्वतर उपनिषद् ३.१,१०, १३; ४.१७, २०

९. १. प्रमाण २. प्रमेय ३. संशय ४. प्रयोजन ५. दृष्टान्त ६. सिद्धान्त ७. अवयव ८. तर्क ९. निर्णय १०. वाद ११. जल्प १२. वितण्डा १३. हेत्वाभास १४. छल १५. जाति तथा १६. निग्रह स्थान [द्रष्टव्य, न्यायसूत्र १.१.१]

१०. 'प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः' (न्यायभाष्य, पृ. २३)

११. 'प्रमाणैरनुमानादिभिरर्थस्य परीक्षणं परिशोधनं न्यायो न्ययनं निश्चयः।
कुतर्कजं परीक्षणं व्यावर्त्तयति प्रत्यक्षागमाश्रितमिति। प्रत्यक्षागमाविरुद्धमित्यर्थः।
अनुमानमनुमितिः। सान्वीक्षा।' [भाष्य चन्द्रिका, पृ. २२]

१२. 'प्रत्यक्षपरिकल्पितमप्यर्थमनुमानेन बुभुत्सन्ते तर्करसिकाः'

१३. आन्वीक्षिक्यात्मविद्या स्यादीक्षणात्सुखदुःखयोः।
ईक्षमाणस्तया तत्त्वं हर्षशोकौ व्युदस्यति।। [२.११]

१४. कणादेन तु सम्प्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत्।
गोतमेन तथा न्यायं, सांख्यं तु कपिलेन वै। [पद्म. उत्तर खं. अ. २६३]

१५. गोतमः स्वेन तर्केण खण्डयन् तत्र तत्र हि। (स्कन्द, कालिका खं. अ. १७)

१६. गोतमप्रोक्तशास्त्रार्थनिरताः सर्व एव हि। शार्गालीं योनिमापन्नाः सन्दिग्धाः सर्वकर्मसु।।
[गान्धर्व तन्त्र-प्राणतोषिणी तन्त्र में उद्धृत]

१७. मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्।
गोतमं तमवेक्ष्यैव तथा वित्थ तथैव सः। (नैषध, सर्ग १७, श्लोक-१५)

१८. एषा मुनिप्रवरगोतमसूत्रवृत्तिः श्रीविश्वनाथकृतिना सुगमाल्पवर्णा।
श्रीकृष्णचन्द्रचरणाम्बुजचञ्चरीकश्रीमच्छिरोमणि वचः प्रचयैरकारि। (विश्वनाथवृत्ति)

१९. योऽक्षपादमृषिं न्यायः प्रत्यभाद् वदतां वरम्।
तस्य वात्स्यायन इदं भाष्यजातमवर्तयत्। (न्यायभाष्य, पृ. ९१९)

२०. यदक्षपादः प्रवरो मुनीनां शमाय शास्त्रं जगतो जगाद्।
कुतार्किकाज्ञाननिवृत्तिहेतौः करिष्यते तस्य मया निबन्धः। (न्यायवार्तिक)

२१. अथ भगवता अक्षपादेन निःश्रेयसहेतौ शास्त्रे प्रणीते। (न्याय-वार्तिकतात्पर्यटीका)

२२. अक्षपादप्रणीतो हि विततो न्यायपादपः।
सान्द्रामृतरसस्यन्दफलसन्दर्भनिर्भरः।। (न्यायमञ्जरी)

२३. भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि। साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये। मानवीयं धर्म शास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च। (प्रतिमा नाटक, अङ्क ५)

२४. द्र. Goldstucker : Panini, p. 116

२५. 'How the pravashis cause a man to be born who is a master in assemblies and skilled in a sacred love, so that he come away from a debate as a victor over Gotama' (I.H. Moulton : Early Religious poetry of Persia, p. 141)

२६. द्रष्टव्य, Journal of Bihar Research Society, Vol. XLI pt. IV, pp. 508&10.

२७. द्रष्टव्य, D.C. Bhattacharya : History of Navya-Nyaya in Mithila, p.23.

२८. वही, पृ. २३

२९. न खलु पाटलिपुत्रे उपलब्धस्य प्रासादस्य शिलाह्नदे स्मरन्नभ्रान्तः। (न्यायकणिका, पृ. ३०१)

३०. अस्ति च पाटलिपुत्रे पूर्वदृष्टस्य देवदत्तस्य परत्र माहिष्मत्यामवभासः। [भारती, पृ. ११]

३१. पारावारमध्यपातौ हि सेतुः ताभ्यामवच्छिद्यमानो जलविधारको
लोके दृष्टः न तु बन्ध हेतुमात्रम्। हडि निगडादिष्वपि प्रयोगप्रसङ्गात्। [वही १.३.१.पृ. २०४]

३२. नृपान्तराणां मनसाप्यगम्यां भ्रूक्षेपमात्रेण चकार कीर्तिम्।
कार्तस्वरासारसुपूरितार्थसार्थः स्वयं शास्त्रविचक्षणश्च।।
नरेश्वरा यच्चरितानुकारमिच्छन्ति कर्तुं न च पारयन्ति।
तस्मिन्महीपे महनीयकीर्त्तौ श्रीमन्नृगेऽकारि मया निबन्धः। [वही, श्लोक ५-५, पृ. ९०६]

३३. द्रष्टव्य, D.C. Bhattacharya : History of Navya-Nyaya in Mithila, p.26-30.

३४. द्रष्टव्य, भावप्रकाशिका, पृ. ६५, (मद्रास संस्करण)

३५. टीकाओं की सूची के लिए द्रष्टव्य–भण्डारकर संस्करण, पृष्ठ- १९-२०

३६. द्रष्टव्य, History of Navya-in Mithila, p. 86

३७. द्रष्टव्य, पृ. १४०-४१

३८. द्रष्टव्य, History of Navya Nyaya in Bengal and Mithila, J.A.S.B. New Series, XI, 1916, pp. 259-92

३९. द्रष्टव्य, D.C. Bhattacharya, History of Navya-Nyaya in Mithila, pp. 97-98.

४०. द्रष्टव्य, Materials For The Study of Navya-Nyaya Logic by Daniel Henry Holms Ingalls. p. 8

४१. द्रष्टव्य, राजकीय हस्तलिखित पुस्तकागार मद्रास, पुस्तक संख्या, आर १५५६